सीताराम गोयल
और
रामविलास शर्मा

लेखक : डॉ० शंकर शरण

स्रोत

https://www.pravakta.com/ram-vilas-sharma-and-sita-ram-goel/

अक्तूबर में दो वैचारिक योद्धाओं का जन्म-दिवस पड़ता हैः डॉ. रामविलास शर्मा (1912-2000) और सीताराम गोयल (1921-2003)। वैयक्तिक जीवन में दोनों ही निःस्वार्थ, सादगी पसंद थे। इस के बाद समानता समाप्त हो जाती है। जहाँ सीताराम जी ने कम्युनिस्ट और इस्लामी राजनीति के कड़वे सत्य को सामने लाने के लिए आजीवन संघर्ष किया, वहाँ शर्मा जी ने स्तालिनवादी कम्युनिज्म के प्रचार में ही अपनी लेखनी समर्पित कर दी। सीताराम जी ने अपना अधिकांश लेखन अंग्रेजी में किया, जब कि शर्मा जी ने सारा लेखन हिन्दी में किया। शर्मा जी अंग्रेजी को जनता का शोषण जारी रखने की भाषा मानते थे, इसलिए अंग्रेजी के प्रोफेसर हो कर भी उन्होंने अपना लेखन अंग्रेजी में नहीं किया। इसके उलट सीताराम जी ने प्रायः अपना संपूर्ण लेखन अंग्रेजी में किया। सोच-समझकर। उन का विश्वास था कि भारतीय भाषा-भाषी जनता स्वभाव से ही देशभक्त है। केवल अंग्रेजी भाषी भारतीय विविध विदेशी साम्राज्यवादी धारणाओं से ग्रस्त हैं। यही लोग राजनीतिक, आर्थिक रूप से प्रभावी भी हैं। अतः इन्हीं भारतीयों का वैचारिक भ्रम तोड़ने का लक्ष्य सीताराम जी ने अपने सामने रखा था। लगभग आधी शती तक वे निरंतर शोध व लेखन करते रहे। अपने लक्ष्य में वह कितने सफल हुए, हुए यह अभी कहना कठिन है। किंतु हम इतना जानते हैं कि में सीताराम जी के निधन का समाचार भी अंग्रेजी मीडिया ने न छापा; श्रद्धांजलि देना तो दूर रहा। यह हमारे देश में प्रचलित विचित्र “सेक्यूलरिज्म” और बड़बोले “वामपंथ” के दबदबे का ही फल था।

सीताराम गोयल ने सन् 1951 से ही सोवियत संघ और लाल चीन की सच्चाइयों से देशवासियों को अवगत कराने का बीड़ा उठाया था। तब आम शिक्षितों की कौन कहे, स्वयं प्रधानमंत्री नेहरू कम्युनिस्ट देशों के बारे में भारी गलतफहमियों से ग्रस्त थे। ऐसे प्रतिकूल समय में सीताराम जी ने बिना आर्थिक साधन या अकादमिक पद के जिस तरह साम्यवादी सिद्धांत, व्यवहार और विश्वव्यापी अनुभवों के बारे में लिख और अनुवाद करके प्रचुर सामग्री उपलब्ध कराई – उस से निस्संदेह किसी "योद्धा लेखक" की ही तस्वीर उभरती है। संपूर्ण जीवन उन्होंने जो शोध, अध्ययन और लेखन किया वह बिना किसी सरकारी या गैर-सरकारी सहायता के। इसी से समझा जा सकता है कि कितने परिश्रम, अध्वसाय और देशसेवा से प्रेरित होकर उन्होंने लगभग पाँच दशक तक सरस्वती सेवा की!

हिन्दी पाठकों को डॉ. रामविलास शर्मा के लेखन और विचारों के बारे में पर्याप्त जानकारी है – शायद ही कोई हिन्दी पत्रिका होगी जिसने शर्मा जी का कोई लेख, निबंध या साक्षात्कार अथना उनके बारे में लेख कई बार न प्रकाशित किया हो, इसलिए यहाँ सीताराम गोयल की विद्वत प्रखरता की अधिक चर्चा उपयुक्त होगी। सीताराम जी की बौद्धिक हस्ती को उनके सतर्क विरोधी बखूबी जानते थे। हरियाणा के बारे में एक बार किसी ने परिहास में कहा था कि वहाँ तो 'ढाई व्यक्ति' ही विद्वान हैं। खुशवन्त सिंह ने नोट किया है कि इन में एक सीताराम जी थे!

1921 में एक गरीब परिवार में जन्मे सीताराम गोयल पहले गाँधीजी से प्रभावित थे। विद्यार्थी जीवन में उन्होंने 'हरिजन आश्रम' के लिए काम किया। छात्रों के बीच अध्ययन केंद्र भी चलाया। बीस वर्ष के होते-होते वे मार्क्सवाद के प्रभाव में आए। उन्होंने 1944 में दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए. किया। मेधावी छात्र के रूप में उन्हें कई पुरस्कार भी मिले। उन्होंने कम्युनिस्टों द्वारा 1947 में भारत-विभाजन की सक्रिय पैरोकारी का विरोध किया। फिर भी 1948 में वे कलकत्ता में कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बनने जा रहे थे, जब रामस्वरूप (चिंतक और योगी) के संपर्क में आने से उनका भ्रम टूटा। तब से रामस्वरूप का सीताराम जी के विचारों पर अत्यधिक प्रभाव रहा। फिर उनका संपूर्ण जीवन मानो कम्युनिस्ट कपट से भारतवासियों को सावधान करने में समर्पित हो गया। चीन और माओवाद के यथार्थ पर 1952-55 के बीच ही उन्होंने सात पुस्तकें लिखी थीं। आर्थर कोएस्लर, आंद्रे जीद, विक्टर क्रावचेंको, फिलिप स्प्रैट जैसे लब्ध-प्रतिष्ठित विदेशी लेखकों एवं पूर्व-कम्युनिस्टों की रचनाओं के अनुवाद इस से अलग थे।

1957 में सीताराम जी दिल्ली आ गए। कुछ समय तक जयप्रकाश नारायण के सहयोगी का भी काम किया। सांप्रदायिकता पर जे.पी. के एकांगी विचारों को सीताराम जी ने एकाधिक बार जबर्दस्त झटका देकर सुधारा था, जो अलग प्रसंग है।

मार्क्सवाद और कम्युनिज्म की आलोचना से बढ़ते-बढ़ते गोयल इतिहास की ओर प्रवृत्त हुए। यह स्वभाविक था। यहाँ बौद्धिक क्षेत्र में मार्क्सवादी प्रहार इतिहास की मार्क्सवादी कीमियागिरी के माध्यम से ही हो रहा था। भारतीय मार्क्सवाद में सोवियत संघ व चीन का गुण-गान, इस्लाम का महिमामंडन तथा हिंदुत्व के प्रति शत्रुता – यही तीन तत्व सदैव केंद्रीय रहे। अतएव मार्क्सवादियों से उलझने वाले के लिए भी इन विषयों में उतरना लाजिमी हो जाता है। उसे हिंदुत्व के पक्ष में खड़ा होना ही पड़ता है। सीताराम जी ने भी कम्युनिज्म की घातक भूमिका, भारतीय इतिहास के इस्लामी युग, हिंदुत्व पर हो रहे इस्लामी तथा ईसाई मिशनरी हमलों के बारे में अथक रूप से लिखा। इस के लिए ही उन्होंने 'वॉयस ऑफ इंडिया' (हिंदी में 'भारत-भारती') नामक प्रकाशन संस्था कायम की, जो आज भी चल रही है। 1951 से 1998 तक गोयल ने स्वयं तीस से भी अधिक पुस्तकें तथा सैकड़ों लेख लिखे, किंतु नेहरूवादी, वामपंथी बौद्धिक वर्ग द्वारा सत्ता के दुरुपयोग तथा 'मौन के षड्यंत्र' द्वारा उसका दमन करने की कोशिशें चलती रही। परन्तु, जैसा बेल्जियन विद्वान कोएनराड एल्स्ट ने नोट किया है, गोयल की बातों का या उनकी पुस्तकों में दिए तथ्यों का आज तक कोई खंडन नहीं कर सका है। उसके प्रति एक सचेत मौन रखने की नीति रही। इसीलिए उनके लेखन से हमारे आम शिक्षित जन काफी-कुछ अनजान से ही हैं। इसे भारत में कांग्रेसी-मार्क्सवादी वैचारिक मोर्चेबंदी के संदर्भ में ही समझा जा सकता है।

भारतीय इतिहास के बारे में सीताराम जी द्वारा प्रस्तुत सामग्री से मार्क्सवादी प्रोफेसर सदैव कतराते रहे। ऐसे कई प्रोफेसर जब स्कूली विद्यार्थी रहे होंगे या पैदा भी न हुए होंगे, तब से गोयल चुनौतीपूर्ण लेखन कर रहे थे। फिर भी यह उपेक्षा-भंगिमा अपनाई गई कि 'गोयल के लेखन का महत्व नहीं'। किंतु वस्तुतः मार्क्सवादी उनसे इतना डरते थे कि पुस्तक या लेख में तो क्या, किसी संदर्भ-उल्लेख में भी गोयल का नाम न आने पाए, इस का पक्का उपाय किया। किसी विषय पर अध्ययन-सूची बनाते हुए चलताऊ अखबारी लेखों तक को जगह दे दी जाती है। ऐसी स्थिति में संबंधित विषय की पुस्तक सूची में प्रमाणिक, मूल संदर्भों से समृद्ध पुस्तकों का कहीं जिक्र न करना और क्या दर्शाता है? सीताराम जी के साथ मार्क्सवादियों ने यही किया। उदाहरणार्थ, सीताराम जी की दो खंडों की पुस्तक ***'हिंदू टेम्पल्सः व्हॉट हैपेन्ड टू देम?***

द इस्लामिक एविडेंस' (1990, 1991) भारत में इस्लामी दौर में मंदिरों के विध्वंस का प्रमाणिक दस्तावेज है, लेकिन इसका जिक्र उस युग पर लिखी मार्क्सवादी इतिहासकारों की पुस्तकों, भाषणों या लेखों में नहीं मिलता। केवल इसलिए कि कहीं कोई उत्सुक विद्यार्थी उसे खोजकर देखने न लगे! क्योंकि तब उस झूठे इतिहास की कलई तुरत उतर जाएगी जो मार्क्सवादी इतिहासकारों ने बड़े जतन से चढ़ाई है।

सीताराम जी के लेखन चिंतन से परिचय के लिए यहाँ दो प्रसंग दिए जा रहे हैं। उससे सीताराम जी के सत्यनिष्ठ, प्रमाणिक लेखन और साथ ही, केवल उदाहरणार्थ, हमारे बड़े मार्क्सवादी लेखकों के खोखलेपन का भी परिचय मिल जाता है।

अक्तूबर 1990 में सीताराम जी गाँधी शांति प्रतिष्ठान, दिल्ली में मंडल कमीशन रिपोर्ट पर एक सेमिनार सुनने गए थे। वहाँ वरिष्ठ जनता दल सांसद हुकुमदेव नारायण सिंह यादव ने 'ब्राह्मणों के अत्याचार' पर बोलते हुए उस काल की चर्चा की *"जब बुद्ध-विहारों में बौद्ध भिक्षुओं के रक्त की नदियाँ बहाई गई थी"*। सीताराम गोयल लिखते हैं:

सेमिनार खत्म होने के बाद वक्ता और मेरे बीच यह बात-चीत हुईः

मैं – क्या आप कृपा करके उन बौद्ध विहारों का नाम बताएंगे जहाँ ऐसी घटनाएं हुई थीं?

वक्ता – मैं यह दावा नहीं करूँगा कि मैं जानता हूँ। जरूर मैंने कहीं सुना होगा, या कहीं पढ़ा होगा।

मैं – मैं आपको छः महीने का समय देता हूँ कि आप हिंदुओं द्वारा बौद्ध भिक्षुओं की हत्या किए जाने का एक भी उदाहरण खोज कर दें। मैं केवल एक उदाहरण की माँग कर रहा हूँ, दो भी नहीं।

वक्ता – मैं कोशिश करूँगा।

यह वक्ता मुझे उन बेहतरीन, भले और सज्जन लोगों में से एक लगे जिनसे मैं आज तक मिला होऊँगा। उनकी बात-चीत में सच्चाई का भाव झलकता था। अपनी बात रखने में वे बेहद विनम्र थे। मुझे आशा थी कि वे मेरा सवाल याद रखेंगे और उत्तर देंगे। किंतु तीन साल बीत गए। और इस देश के सार्वजनिक जीवन में उच्च पद पर रहने वाले एक जाने-माने राजनीतिज्ञ की तरफ से कोई जबाव नहीं आया।

कोई कह सकता है कि हुकुमदेव जी ने प्रयास न किया होगा, या भूल गए, आदि। लेकिन जब स्वयं ऐसे प्रपंच फैलाने वालों से प्रमाण माँगा जाता है तब क्या होता है? एक अन्य प्रसंग से यह देखा जा सकता है।

जब सीताराम जी के शोध-ग्रंथ ***'हिंदू टेम्पल्सः व्हॉट हैपेन्ड टू देम? द इस्लामिक एविडेंस'*** का दूसरा खंड 1991 में प्रकाशित हुआ तो उन्होंने इसकी एक प्रति मार्क्सवादी इतिहासकार **रोमिला थापर** को भेजी। थापर तथा मार्क्सवादी संप्रदाय लंबे समय से एक अभियान चला रहा था, जिसमें बार-बार बताया जाता था कि मंदिरों का ध्वंस केवल इस्लामी शासकों ने ही नहीं किया।

जैसे, 2 अक्तूबर 1986 को *'टाइम्स ऑफ इंडिया'* में रोमिला थापर व बारह मार्क्सवादी इतिहासकारों का एक सामूहिक पत्र छपा। अखबार ने कुतुब मीनार और मथुरा संबंधी दो रिपोर्टें छापी थी, जिनसे इस्लामी शासकों द्वारा हिंदू उपासना-स्थलों के ध्वंस की बात सामने आती थी। उस पर रोमिलाजी ने उपदेश देते हुए अंत में कृष्ण-जन्मभूमि मुक्त कराए जाने के मुद्दे पर यह पूछा, *"आखिर हम कितना पीछे जाएंगे ? क्या हम हिंदुओं द्वारा तोड़ी गई बौद्ध और जैन मूर्तियों की पुनर्स्थापना तक इस मामले को ले जा सकते हैं? या हिंदुओं से पहले के भी एनीमिस्ट स्थलों तक?"* **यह एक पुरानी मार्क्सवादी तकनीक है। निराधार दावा भी ऐसे प्रस्तुत करना जैसे जगजाहिर सत्य हो। इससे मनोवैज्ञानिक दबाव दिया जाता है कि मार्क्सवादियों के दावे पर संदेह करते ही आपको अज्ञानी, पिछड़ा या सांप्रदायिक बताया जा सकता है।** यहाँ रोमिला थापर ने एनीमिस्ट (जानवरों की उपासना करने वाले) शब्द का प्रयोग उसी अंदाज में किया, मानो वह मान्य सत्य हो। जबकि इसे ईसाई मिशनरियों ने यहाँ हिंदुओं को तोड़ने, और अपने धर्मांतरण जाल में फँसाने के लिए चलाया था। ब्रिटिश भारत की जनगणना में एक बार अलग 'एनीमिस्ट' श्रेणी का प्रयोग हुआ, मगर बाद में ब्रिटिश अधिकारियों ने ही कहा कि हिंदुओं से एनीमिस्टों को अलग करना कठिन काम है। फिर इसे छोड़ दिया गया। मगर मार्क्सवादी उस औपनिवेशिक, मिशनरी, मनगढ़ंत धारणा को सिर्फ इसलिए पकड़े हुए हैं क्योंकि इनके भी निशाने पर हिंदू ही हैं।

इसी तरह उन्होंने हिंदुओं द्वारा बौद्ध, जैन मंदिरों के विध्वंस का झूठा प्रचार करके उसे 'जाने-माने तथ्य' के रूप में स्थापित किया है। हुकुमदेव जी उसी के शिकार हुए थे। उन्हें पता भी न था कि कब उन्होंने यह मनगढ़ंत बात स्वीकार कर ली। क्यों कर ली, सोचने पर पता चल जाता – क्योंकि हिंदू समाज को बाँटने, तथाकथित सवर्णों के

विरुद्ध अन्य जातियों को उभारने, दलितवाद की धौंस-पट्टी का एक नया तर्क मिलने एवं आरक्षणवादी राजनीति को बल पहुंचाने में यह 'तथ्य' उपयोगी था। इसलिए उसकी जाँच की जरूरत नहीं हुई। इच्छा ही नहीं हुई। **मार्क्सवादी जानते हैं कि कब किसे कौन सा झूठ बेचा जा सकता है।**

किंतु सीताराम जी जैसे इतिहासविदों को *'हिंदुओं द्वारा बौद्ध मंदिरों के ध्वंस'* की इस कथा की धूर्तता से कष्ट होता था। इसीलिए जब उन्होंने ठीक इसी विषय पर शोध कर ग्रंथ लिखे तो मार्क्सवादियों को विचार के लिए आमंत्रित किया। 27 जून 1991 को सीताराम जी ने रोमिला थापर को अपनी पुस्तक के साथ एक प्रश्नावली भेजी। इसमें रोमिला जी से वैसी सामग्री देने का आग्रह था, ताकि हिंदुओं द्वारा मंदिरों के ध्वंस की तस्वीर भी सामने आ सके। जिस तरह इस्लाम द्वारा हिंदू मंदिरों के विध्वंस का इतिहास लिपिबद्ध है, उसी तरह इस विध्वंस का रिकॉर्ड भी सामने लाया जाए। यही आग्रह करते हुए सीताराम जी ने मार्क्सवादियों से ऐसे साक्ष्य व विवरणों की माँग कीः

1. अभिलेखों की सूची जिसमें किसी भी काल में, कहीं भी, किसी हिंदू द्वारा बौद्ध, जैन व एनीमिस्ट मूर्तियों के विध्वंस का उल्लेख हो;

2. हिंदू साहित्यिक स्त्रोतों का संदर्भ जिसमें किसी भी काल में, कहीं भी, किसी हिंदू द्वारा बौद्ध, जैन व एनीमिस्ट मूर्तियों के विध्वंस का वर्णन हो;

3. हिंदू धार्मिक ग्रंथों, शास्त्रों के वह अंश जो अन्य धर्मावलंबियों के पूजा-स्थलों को तोड़ने, लूटने या अपवित्र करने के लिए कहते हों या संकेत भी करते हों;

4. उन हिंदू राजाओं, सेनापतियों के नाम जिन्हें बौद्ध, जैन या एनीमिस्ट पूजा स्थलों को तोड़ने, अपमानित करने या उन्हें हिंदू स्थलों में बदलने के लिए हिंदू जनता अपना महान नायक मनती हो;

5. उन बौद्ध, जैन व एनीमिस्ट पूजा-स्थलों की सूची जिसे हाल में या कभी भी अपवित्र या ध्वस्त या हिंदू स्थलों में परिवर्तित किया गया हो;

6. उन हिंदू मूर्तियों और स्थानों के नाम जो उन स्थानों पर खड़े हैं जहाँ पहले बौद्ध, जैन या एनीमिस्ट पूजा-स्थल थे;

7. बौद्ध, जैन व एनीमिस्ट नेताओं या संगठनों के नाम जो दावा करते हों कि फलाँ-फलाँ हिंदू स्थल उनसे छीने गए थे, और अब उसके पुनर्स्थापन की माँग कर रहे हों;

8. हिंदू नेताओं और संगठनों के नाम जो बौद्ध, जैन या एनीमिस्टों द्वारा अपने पूजा-स्थलों के पुनर्स्थापन की माँग का विरोध कर रहे हों, या जो ऐसे किसी स्थल के लिए यथावत स्थिति बनाए रखने के लिए कानून बनाने की माँग कर रहे हों, या जो 'हिंदुत्व खतरे में है' का शोर मचा रहे हों, या अपने जबरन कब्जे के समर्थन में दंगे कर रहे हों।

कोई भी सत्यनिष्ठ व्यक्ति मानेगा कि 'हिंदुओं द्वारा तोड़ी गई बौद्ध और जैन मूर्तियों की पुनर्स्थापना' का प्रश्न केवल उपर्युक्त आधारों पर ही हल हो सकता है। लेकिन रोमिला थापर या अन्य किसी मार्क्सवादी इतिहासकार ने इन विंदुओं पर कोई सामग्री सीताराम जी को नहीं दी। न अलग से कोई पुस्तक लिखी। ध्यान रहे, बारह इतिहासकारों ने *टाइम्स ऑफ इंडिया* को लिखे उस पत्र पर हस्ताक्षर किए थे जिसमें *'हिंदुओं द्वारा तोड़ी गई बौद्ध और जैन मूर्तियों'* का हवाला दिया गया था। स्वतः नहीं, तो चुनौती देने पर भी वे – 25 वर्ष बीत जाने के बाद भी – कोई पुस्तक तो क्या, एक लेख भी नहीं लिख पाए जो हिंदुओं द्वारा बौद्ध, जैन मूर्तियों को तोड़ने के विषय पर कोई प्रकाश डालता हो! जबकि सीताराम जी ने इस्लामी हमलावरों द्वारा भारत में हिंदू (बौद्ध और जैन भी) मंदिरों, मूर्तियों को तोड़ने की घटनाओं, स्थलों की जो सूची और इस विषयक पुस्तकें लिखी, उस में दिए एख भी तथ्य को आज तक किसी ने चुनौती नहीं दी।

मार्क्सवादी इतिहासकार सदैव गोयल पर सामान्य लांछन लगाकर, उन्हें 'सांप्रदायिक', 'अज्ञानी' आदि कहकर हमेशा कतराते रहे। जैसे रोमिला थापर ने उक्त प्रश्नावली के उत्तर में 10 अगस्त 1991 को गोयल को लिखा, *"...जहाँ तक आपकी प्रश्नावली में उठाए गए मुद्दों की बात है, आप इस विषय पर विभिन्न विचारधारा के असंख्य इतिहासकारों द्वारा हाल में किए गए शोध-कार्यों से संभवतः अनजान हैं। इसलिए* ***शुरुआत के लिए*** *मैं आपको अपना एक प्रकाशित लेक्चर पढ़ने की सलाह देती हूँ, जिसका शीर्षक है 'कल्चरल ट्रांजैक्शन एंड अरली इंडिया'"।*

रोमिला थापर के इस उत्तर में घोर अहंकार तो टपकता ही है, जो सच्चे विद्वान का लक्षण ही नहीं होता! पर ध्यान देने की बात यह है कि थापर ने न तो सीताराम जी

की पुस्तक पर कोई टिप्पणी की, न जिन बिंदुओं को गोयल ने उठाया था उनका उत्तर देने वाली किसी पुस्तक का संदर्भ दिया। वे उन 'असंख्य' इतिहासकारों के किसी शोध-कार्य का कोई ठोस हवाला भी दे सकती थीं, जो सीताराम जी के प्रश्नों का सटीक उत्तर देती हो। इसके बजाए वे अपना लेक्चर पढ़ने से '*शुरुआत*' करने की सलाह ऐसे विद्वान को 1991 में दे रही थीं, जिसने लगभग आधी शताब्दी पहले दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास से एम.ए. किया था और अब तक दर्जनों विद्वत् पुस्तकें लिखी थीं। सबसे विचित्र बात यह कि इस लेक्चर में भी उस प्रश्नावली के एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं है। **सीताराम गोयल अब नहीं रहे, किंतु मार्क्सवादी इतिहासकारों को दी गई उनकी प्रश्नावली आज भी अनुत्तरित है। किसी ने उसे उठाने की हिम्मत नहीं की।**

यह भी विडंबना है कि एक ओर मार्क्सवादी इतिहासकार सीताराम गोयल को **संघ-परिवार का लेखक** बताकर डिसमिस करते रहे, जबकि दूसरी तरफ स्वयं संघ-परिवार ने सीताराम जी से खुद को प्रायः दूर ही रखा। गाहे-बगाहे उनकी सेवाएं जरूर ली गई। लेकिन संघ के मुखपत्र *ऑर्गेनाइजर* में उनके लेख दो बार (1962, 1982) बंद कराए गए। कारण कि कई बुनियादी मुद्दों पर दोनों के विचार मूलतः भिन्न थे। जैसे, **संघ के नेता मानते रहे कि इस्लाम में नहीं, मुसलमानों में गड़बड़ी है, जबकि सीताराम जी का विचार ठीक उल्टा था। उनके अनुसार मुसलमान तो भारतीय समाज का वह हिस्सा हैं जिसे इस्लाम ने प्रताड़ित किया और बरगलाया। अतः वैचारिक संघर्ष इस्लामी मतवाद के साथ करना होगा ताकि मुसलमानों में आत्म-चिंतन शुरू हो और वे प्रवंचना से मुक्त हो सकें।**

संघ परिवार से इस बुनियादी मतभेद के आधार पर सीताराम जी ने 1990 में ही अयोध्या आंदोलन के मुसीबत में फंसने की भविष्यवाणी की थी। तब हिंदुत्ववादियों ने बार-बार मुसलमानों से अपील की कि वे विवादित स्थल पर दावा छोड़ दें। यह कहकर कि इस्लाम में विवादित स्थलों पर मस्जिद बनाने की मनाही है, कि इस्लाम शांति का मजहब है, आदि आदि। जबकि सीताराम गोयल का कहना भिन्न था। उन के शब्दों में, *"मंदिरों के पुनर्स्थापन का आंदोलन रामजन्मभूमि में उलझ कर रह गया है। ज्यादा महत्वपूर्ण सवाल का जिक्र तक नहीं हुआ कि इस्लामी हमलावरों के हाथों मंदिरों का वह हश्र क्यों हुआ? हिंदू नेता इस्लामी प्रचारकों की लफ्फाजी स्वीकार कर बैठे हैं कि इस्लाम में दूसरों के पूजा-स्थलों पर मस्जिद बनाने की मनाही है। ... जो*

आंदोलन सच्चाई से मुँह चुराए, उस की सफलता की संभावना कम ही है। आत्म-छलना पर बनी रणनीति शुरू में ही ध्वस्त हो जाती है।"

इस प्रकार, **सीताराम जी हिंदुत्ववादियों द्वारा इस्लाम के बारे में गोल-गोल बातें कहना भी 'मुस्लिम तुष्टिकरण' का ही एक प्रकार मानते थे।** चूँकि सीताराम जी मुसलमानों को ऐतिहासिक रूप से हिंदू समाज का अंग समझते थे, जिन्हें इस्लामी मतवाद ने अपने इतिहास और पूर्वजों से दूर कर दिया है। इसलिए मुसलमानों में चेतना जगाकर उनके हृदय और मानस को पुनः जीतने के प्रयत्न के अतिरिक्त कोई कर्तव्य नहीं। इसके लिए विभिन्न धर्मों के दर्शन, लक्ष्य और ऐतिहासिक अनुभवों के बारे में सही शिक्षा देना अपरिहार्य है।

सीताराम गोयल जैसे मनीषियों की बातें कितनी सही थीं, इसका फैसला तो इतिहास करेगा ही। **जब बौद्धिक परिदृश्य से मार्क्सवादी व सेक्यूलर प्रवंचनाओं का धुँधलका छँटेगा और भारत का बीसवीं सदी का बौद्धिक आकलन किया जाएगा, तब सीताराम जी जैसे विद्वानों का महत्व अधिक स्पष्ट होगा। वे पहले 'सांप्रदायिक' लेखक थे जिन्होंने ईसाई, इस्लामी और मार्क्सवादी – इन तीनों साम्राज्यवादी विचारधाराओं द्वारा लादे गए भारत संबंधी विश्लेषणों का मुँहतोड़ जबाव दिया।**

परन्तु अभी यह विचारणीय है कि हमारे बुद्धिजीवी वर्ग ने सीताराम गोयल से क्यों किनारा किए रखा?

दूसरी ओर रामविलास शर्मा को सरकार और विद्वत जगत दोनों से भरपूर प्रचार और सम्मान मिला, जबकि शर्माजी का लेखन मार्क्सवादी अंधविश्वास और तदनुरूप एकांगी तर्कों, छिद्रान्वेषण और लफ्फाजी पर आधारित था। उनकी किसी भी पुस्तक में देखा जा सकता है कि उनके लिए तथ्यों का मूल्य भी सदैव लेनिन-स्तालिनवादी विचारधारा के अधीन था। अर्थात्, जो तथ्य इस विचारधारा की सेवा में उपयोग किए जा सकते थे, शर्मा जी के लिए केवल वही तथ्य थे, जबकि ऐसी बातों, घटनाओं, तथ्यों का विशाल भंडार जो कम्युनिस्ट व इस्लामी राजनीति को खंडित करते या कठिनाई में डालते, शर्मा जी के लिए अस्तित्वहीन थे। जीवन के अंतिम चरण में अवश्य शर्मा जी ने हिंदू मनीषा को गंभीरता से देखना आरंभ किया था, जो अनंतर उन के मार्क्सवादी अंधविश्वासों को काट सकती थी। किंतु आयु पूरी हो जाने से वह काम अधिक दूर न जा सका। अतएव उन का संपूर्ण लेखन प्रायः मार्क्सवादी-स्तालिनवादी मताग्रहों को फैलाना भर ही रहा।

शर्मा जी का वैचारिक कार्य कितना सफल रहा यह इसी से स्पष्ट है कि हिंदी की कोई पत्र-पत्रिका नहीं, जिसके पाठक उन के नाम से अपरिचित हों। इतना ही नहीं, देश की विभिन्न 'बुर्जुआ' सरकारों, संस्थानों ने बुर्जुआ सत्ता उखाड़ फेंकने की प्रतिज्ञा वाले इस मार्क्सवादी-लेनिनवादी लेखक को बार-बार पुरस्कृत किया! शर्मा जी की पुस्तकें ही नहीं, भाषण और पुराने लेख भी विभिन्न 'बुर्जुआ' प्रकाशक और सरकारी संस्थान भी शौक से निरंतर छापते रहे। उनके साक्षात्कारों की तो कोई गिनती ही नहीं, यद्यपि लगभग सब में कुछ लेनिन-स्तालिनवादी अंधविश्वासों, जड़-सूत्रों, घोषणाओं का दुहराव ही है। चाहे 1940 के दशक का या 1980 के दशक का लेखन हो, शर्माजी की किसी भी पुस्तक को उठाकर यह देखा जा सकता है।

केवल भरपूर लिखने मात्र से शर्माजी प्रसिद्धि नहीं हुए। वे स्वयं 'प्रगतिशील लेखक संघ' के तानाशाह नेता भी रहे थे। फिर उनका प्रचार करने वाली संगठित मार्क्सवादी मंडलियाँ भी थीं। साथ ही, सत्तागत सुविधाएं और मान-सम्मान देने के लिए प्रभावशाली नेहरूपंथी राजनीतिक लोग भी थे। ऐसी कोई सुविधा सीताराम जी को जीवनपर्यंत कभी नहीं मिली। उन्होंने अपने साहित्यिक लेखन के लिए '*एकाकी*' उपनाम यों ही नहीं रखा था।

जब कि सीताराम जी का सत्यनिष्ठ, सुसंगत, सशक्त लेखन भी हमारे वृहत बुद्धिजीवी वर्ग के बीच लगभग अपरिचित ही बना रहा है, यद्यपि उन्होंने भी उतनी ही निष्ठा से, उतनी ही लंबी अवधि – लगभग आधी शती — तक अपना लेखन किया। सीताराम जी द्वारा लिखित और संपादित ग्रंथों की सूची शर्मा जी द्वारा लिखित ग्रंथों से अधिक ही है। किंतु उन्हें अकादमिक जगत की मान्यता नहीं के बराबर मिली। इस में निश्चय ही उस सचेत राजनीतिक-वैचारिक दुराग्रह का हाथ था जो 'सेक्यूलरिज्म' व 'प्रगतिवाद' के नाम से हावी है। फिर, शर्मा जी की मार्क्सवादी मंडलियों की तरह सीताराम जी के लेखन को प्रचारित करने वाली कोई कटिबद्ध राष्ट्रवादी या हिन्दूवादी मंडली नहीं थी। यह विडंबना ही है कि अकादमिक जगत उन्हें 'संघ परिवार का लेखक' बताकर उपेक्षित करता रहा, जब कि **संघ परिवार ने सीताराम जी के लेखन को सुधी जनों तक पहुँचाने के कार्य को कभी महत्व नहीं दिया, जो अनिवार्यतः होना चाहिए था।**

सीताराम जी ने तीस से अधिक पुस्तकें लिखी हैं, इस से उनकी महत्ता का पता नहीं चलेगा। उसका पता इस से चल सकता है कि उनकी लिखी पुस्तकों में एक भी

ऐसी नहीं है, जिसे कोई खुले मस्तिष्क का पाठक पढ़कर वही रह जाए जो वह पहले था। दूसरे शब्दों में, उनका संपूर्ण लेखन मौलिक चिंतन, शोध और सत्यनिष्ठा से ओत-प्रोत है। इसी कारण, हमारे घोषित 'व्यवस्था विरोधी' प्रगतिवादी संपादकों, प्रोफेसरों ने पाठकों, विद्यार्थियों को सीताराम जी के लेखन से प्लेग की तरह बचा कर रखा है। क्योंकि उसे पढ़कर कोई भी विद्यार्थी वामपंथी मिथ्याचार और छल-प्रपंच को समझे बिना नहीं रह सकता। उसमें आज भी इतना विचारोत्तेजक नयापन महसूस होती है।

सीताराम जी के अध्ययन-विश्लेषण के मुख्य विषय थे: सोवियत-चीनी समाजवादों की असलियत, लेनिनवादी वैचारिक जड़ता, कम्युनिस्ट पार्टियों का अंधविश्वास, ईसाई मिशनरी संगठनों का साम्राज्यवादी-धर्मांतरणकारी लक्ष्य, इस्लामी राजनीति की एकांतिकता-असहिष्णुता-छल-कटिबद्धता और इन सब का भारतीय बौद्धिक-राजनीतिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव। इन संबंधी उनके संपूर्ण लेखन, विश्लेषण को परख कर कोई भी स्वयं देख सकता है कि उनके आकलन प्रमाणिक और निष्कर्ष सटीक थे। तब भी और आज भी। इसीलिए देश के प्रभावी सेक्यूलर-वामपंथी बौद्धिकों ने सीताराम जी को गुम रखने का प्रयास किया।

यदि सीताराम जी का लेखन सतही, संकीर्ण और दुराग्रही होता, तो उस पर मौन रखने की बजाए वामपंथी अकादमिक-प्रचारक वर्ग ने बड़े शौक से उसे सामने रखकर, उस का खंडन कर, बौद्धिक अंक अर्जित करने का अवसर न छोड़ा होता। वामपंथी वैसे भी खंडन-मंडन के प्रेमी हैं। किंतु सीताराम जी के लेखन का खंडन करना ही असंभव था! इसीलिए उन के लेखन को जितना उपेक्षित किया जा सकता था, किया गया, ताकि उस के प्रभावी जीवाणु पाठकों तक पहुँच ही न सकें।

जब कि शर्मा जी की सभी बुनियादी धारणाओं – मार्क्सवाद की वैज्ञानिकता, सोवियत आदर्श, वर्ग-संघर्ष की केंद्रीयता और विश्व-साम्यवाद की अबाध अग्रगति – को काल ने कूड़ेदान में फेंक दिया है। 1946 ई. से 1994 तक लिखी हुई उन की तमाम पुस्तकों, लेखों के आम निष्कर्ष आज किसी को भी स्वतः हास्यास्पद जान पड़ेंगे। आज कोई प्रगतिवादी भी उन्हें उद्धृत नहीं करता! क्योंकि वह सब जड़-विचारधारा के अंधविश्वास और जिद के आधार पर लिखा गया प्रचारात्मक पार्टी-लेखन था। ध्यान रहे: शर्मा जी के लेखन की मूल्यवत्ता आज नहीं गिर गई है। तथ्य, प्रमाण और तर्क की कसौटी पर वह तब भी नहीं टिकती जब वह लिखी गई थी। आज तो उसका कोई मूल्य

इसलिए नहीं रह गया, क्योंकि दुनिया की अनवरत घटनाओं ने जगजाहिर कर दिया है कि ‘इतिहास की गति के नियम’ और उन समाजवादी स्वर्गों का सत्य क्या था जिनको ध्रुवतारा मान कर शर्मा जी जैसे लेखक दशकों अपनी लेखनी चलाते रहे।

प्रबुद्ध पाठकों के लिए सीताराम गोयल और राम विलास शर्मा के संपूर्ण वांङ्मय उपलब्ध हैं। दोनों के लेखन के सभी आकलनों, विश्लेषणों, निष्कर्षों को देखें तो निस्संदेह किसी भी निष्पक्ष निर्णायक मंडल का यही निर्णय होगा कि समय ने सीताराम जी के सभी विचारों की पुष्टि की और शर्मा जी की सभी मान्यताओं को निर्ममता से ठुकराया है।

सामान्य पाठक को किसी लेखक की बातों को प्रमाणिकता, अनुभव और सुसंगत तर्क पर तोलने में कोई दुविधा नहीं रहती है। उस के कोई निहित स्वार्थ नहीं जो उसे सत्य को पीछे धकेल किसी वैचारिक पाखंड को दुहराने के लिए विवश करें। यही कारण है कि दशकों से मार्क्सवादी-प्रगतिवादी लेखकों के प्रचार के बाद भी यहाँ किसी मार्क्सवादी लेखक के प्रति वह ललक नहीं बन सकी जो आज भी बंकिमचंद्र, रवीन्द्रनाथ, निराला, प्रेमचंद, अज्ञेय जैसे अनमोल लेखकों के प्रति मौजूद है। सीताराम जी का वैचारिक लेखन उसी श्रेणी का है, यह कोई पाठक स्वयं परख सकता है।

पर सीताराम जी का लेखन नेहरूवादी, सेक्यूलर-वामपंथी, हिंदू विरोधी, भारत-विमुख, अमेरिका-उन्मुख एलीट वर्ग और उन के अनुगामियों को नहीं रुचा। क्योंकि यह उनके राजनीतिक-आर्थिक स्वार्थों से मजबूती से जुड़ा था, और इसलिए अपने संकीर्ण हितों के प्रति सचेत था। उसे सीताराम जी के लेखन की कोई जरूरत नहीं थी। बल्कि वह उन्हें खामखाह मुसीबत खड़ा करने वाला, अपनी स्वार्थी, आरामदायक दुनिया में खलल डालने वाला प्रतीत होता था। ऊपर रोमिला थापर का उदाहरण देखा जा सकता है कि सीताराम जी द्वारा भेजे गए प्रश्न उनके लिए कितनी मुसीबत साबित हुए!

सीताराम जी ने निस्संदेह सच लिखे थे। किंतु उन्हें सामने लाने, विचार करने का परिणाम क्या होता? पहला, देश की अर्थव्यवस्था को समाजवादी दुराग्रहों से मुक्त करना। इस से शासकीय हितों के अनुरूप बनी नौकरशाही और सत्ताधारी नेताओं की ऊपरी आमदनी व शाही सुविधाओं का बड़ा स्त्रोत खत्म हो जाता। दूसरे, इस्लामी राजनीति-विचारधारा आदि की कठिन वास्तविकता स्वीकार करनी होती। तब देश के मुस्लिमों के साथ वैचारिक शिक्षण और विमर्श का कठिन कार्य हाथ में लेना होता।

तीसरे, ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों पर कमोबेश अंकुश लगाना होता। अर्थात् धनी, कटिबद्ध मिशनरी संगठनों तथा यूरोपीय सरकारों, संगठनों से यदा-कदा कूटनीतिक दो-दो हाथ करने के लिए हमेशा तैयार रहना पड़ता। अनेक कठिन कानून बनाने और उन्हें लागू करने की जहमत भी उठानी पड़ती।

इस प्रकार, सीताराम जी के जैसे लेखन को सामने लाने और सब के समक्ष रखने से यह कर्तव्य अपने-आप बनते थे। इन कर्तव्यों को हाथ में लेने के लिए हमारे पश्चिमोन्मुख, स्वार्थी, जनता से दूरी रखने वाले बुद्धिजीवी, प्रशासक वर्ग में क्या दिलचस्पी हो सकती थी? यही कारण है प्रमाणिक और अंग्रेजी में होने के बाद भी सीताराम जी का लेखन हमारे प्रभावी बुद्धिजीवियों के लिए भी उपेक्षणीय रहा, जब कि शर्माजी का लेखन घोर क्रांतिवादी होते हुए भी पूर्णतः काल्पनिक, इसलिए हानिरहित था! उस में विचारशील लोगों को प्रभावित करने, और शासकों-प्रशासकों के लिए कोई ठोस समस्या खड़ी करने जैसी कोई सामर्थ्य न थी। बल्कि उसका उपयोग राष्ट्रवादी और हिन्दूवादी राजनीतिक शक्तियों को लांछित करने में खूब हो सकता था। नेहरूपंथी राजनीतिक दलों, नेताओं को इसका आभास था। उनकी राजनीतिक संवेदना जिस सतर्कता से सीताराम गोयल जैसे विद्वान को उपेक्षित करती थी, उसी सावधानी से हर तरह के प्रगतिवादी को प्रोत्साहित भी करती थी। यह एक ही कार्य के दो पहलू भर थे। इसीलिए रोमिला थापर और रामविलास शर्मा जैसे मार्क्सवादी विद्वानों को भरपूर आदर, सम्मान, पद और पुरस्कार देते रहने में उन का उत्साह कभी मंद न पड़ा।

सीताराम गोयल द्वारा लिखित / सम्पादित कुछ प्रमुख पुस्तकें

◙ How I Became a Hindu

◙ Hindu Society Under Siege

◙ Defence of Hindu Society

◙ Papacy: Its Doctrine and History

◙ Genesis and Growth of Nehruism

◙ Time for Stock-Taking (Ed.)

◙ Heroic Hindu Resistance to Muslim Invaders

◙ Islam vis-à-vis Hindu Temples

◙ Muslim Separatism: Causes and Consequences

◙ Calcutta Quran Petition (Ed.)

◙ The Story of Islamic Imperialism in India

◙ Pseudo-Secularism, Christian Missions and Hindu Resistance

◙ India's Secularism: New Name for Natoinal Subversion

◙ Secularism: Another Name for Treason

◙ The Emerging National Vision

◙ Catholic Ashrams: Sannyasins or Swindlers? (Ed.)

◙ History of Hindu-Christian Encounters

◙ St. Francis Xavier: The Man and His Mission

◙ Stalinist Historian Spread the Big Lie

◙ Freedom of Expression (Ed.)

◙ Perversion of India's Political Parlance

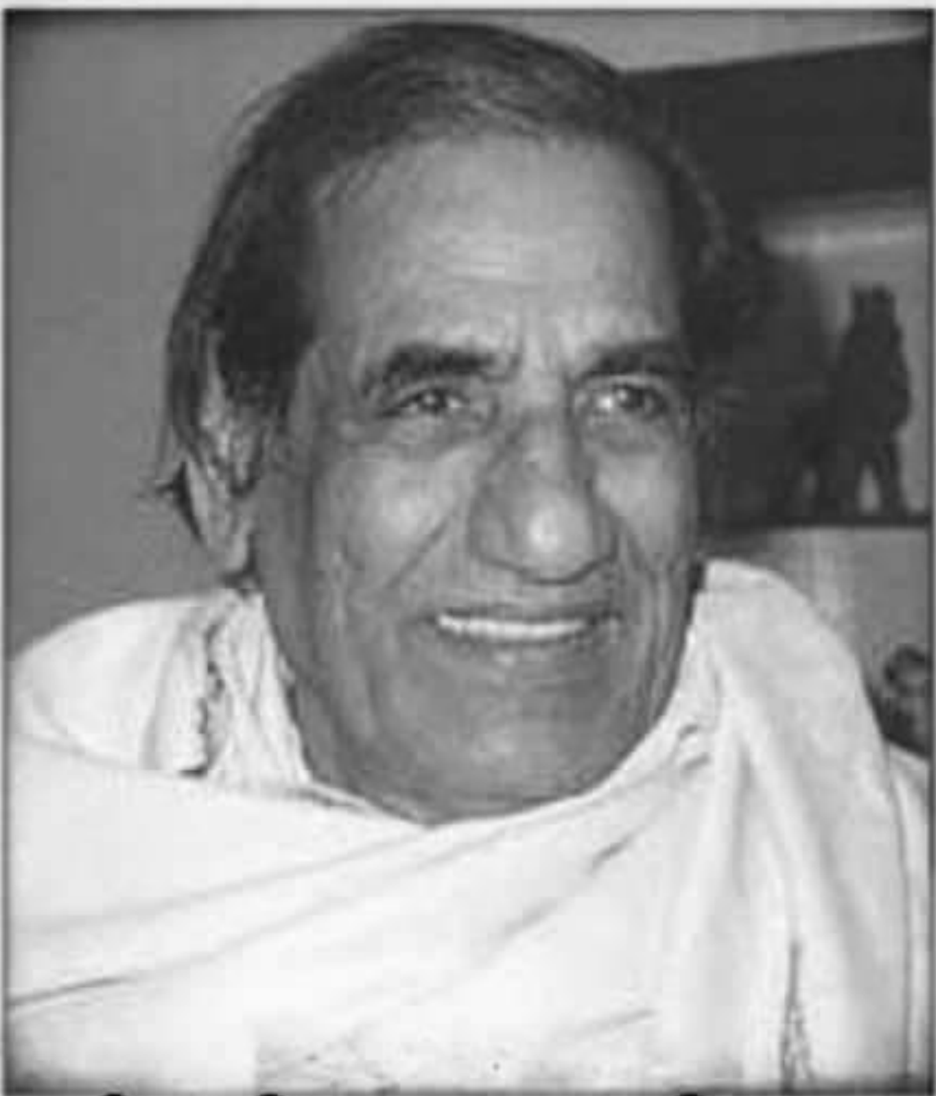
◙ Hindus and Hinduism

◙ An Experiment with Untruth

◙ Hindu Temples: What Happened to Them? (in 2 Vols)

◙ Tipu Sultan: Villain or Hero? (Ed.)

◙ Jesus Christ: An Artifice for Aggression



श्री सीताराम गोयल

(१६.१०.१९२१ • ३.१२.२००३)